Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 9, Issue 2 | November 2021 - April 2022 | pp. 141-144

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुओं का महत्त्व

चतुर भुज यादव

सहायक आचार्य, इतिहास (विद्या सम्बल योजना)
राज. कन्या महाविद्यालय सिकन्दरा, दौसा

शोध सारांश

अर्थव्यवस्था में पशुओं की अपनी महती भूमिका है। पशुओं के द्वारा अर्थव्यवस्था, व्यापार वाणिज्य तथा विकास के मध्य सामंजस्य स्थापित किया जाता होता है। अर्थव्यवस्था में पशुपालन के कारण इतिहास में जन जागरण, नव निर्माण, नवोत्कर्ष महान सृजनात्मक युग का प्रारम्भ हुआ। व्यक्तिगत तथा शैक्षिक कार्यों को भी गति मिली। जैसे यत्र-तत्र बिखरी हुई अर्थव्यवस्था को जोड़ने तथा उसमें सामंजस्य स्थापित करना भी पशुपालन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। हम प्राचीन भारत में पशुओं के विवेचन को सैन्धव सभ्यता, वैदिक, महाकाव्य काल, मौर्यकाल, मौर्यत्तर काल, गुप्त काल, में उल्लेखित पशुओं विवरण धार्मिक साहित्य, अभिलेख, मुद्राओं में इस का संकेत प्रदान करते है। पशुपालन न केवल प्राचीन भारत में महत्त्वपूर्ण था बल्कि मध्यकाल, वर्तमान में भी अर्थव्यवस्था का मजबूत आधार है। अत: निश्चित रूप में पशुओं के महत्त्व को हम अर्थव्यवस्था में और मजबूती से रखते हैं तो आर्थिक विकास को नया गतिमान मिलेगा और प्रदेश, देश, अन्तरराष्ट्रीय स्थिति की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ सुगम होगी। क्योंकि आर्थिक जीवन का मूल आधार कृषि, पशुपालन, व्यापार है और आज भी विश्व समाज इन्हीं आधारों पर अवस्थित है।

संकेताक्षर— *धार्मिक आस्था, आर्थिक महत्व, पशुपालन*

प्रस्तावना

विश्व समाज के आर्थिक जीवन का मूल आधार प्रारम्भ से ही कृषि, पशुपालन और व्यापार रहा है। जो यह तीनों अवस्थाएँ एक दूसरे के पूरक रूप में रहे है। यदि हम प्राचीन भारत की आर्थिक दृष्टि की समृद्धता तथा सम्पन्नता का अवलोकन करते है तो उसमें पशुओं का महत्त्वपूर्ण स्थान दिखाई देता है। यह सत्य है कि समय-समय पर मनुष्य के आर्थिक कार्यक्रम उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप घटते-बढ़ते तथा परिवर्तित होते रहे हैं। आर्थिक जीवन को उत्प्रेरित करने वाली प्रवृत्तियाँ प्रत्येक युग में सहज रूप से स्वभावत: उद्‌भूत होती रही है।[1]

प्राचीन भारत में पशुपालन की महत्ता को अनेक प्रकार से स्वीकार किया गया है। कौटिल्य और बृहस्पति जैसे अनेक भारतीय शास्त्रकारों ने भी मनुष्य के जीवन में अर्थ की आवश्यकता और महत्ता के रूप में पशुपालन की व्याख्या प्रतिपादित की है। सिन्धु सभ्यता से लेकर वर्तमान काल तक पशुपालन का महत्त्व देखने को मिलता है।[2]

पशुओं का दैनिक जीवन के उपयोग से लेकर युद्ध आदि काल में पशुओं की विशेष उपयोगिता व्यक्त की गयी है। इन पशुओं का महत्त्व निम्न प्रकार से था।

1. धार्मिक आस्था के रूप में पशुओं का महत्त्व

प्राचीन भारत में मनुष्य ने कुछ पशुओं को मानवीय जीवन में धार्मिक महत्त्व के रूप में पशुओं की पूजा-अर्चना का विवरण भी मिलता है। जैसा कि हम देखते हैं सिन्धु सभ्यता से प्राप्त कूबड़ वाले बैल का धार्मिक महत्त्व था।[3] ऋग्वैदिक काल में गाय को माता के रूप में तथा शतपथ ब्राह्मण में गाय बैल को पृथ्वी धारणा करने वाला बताया है।[4]

''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'' उल्लेख है।[5] यज्ञकर्म में पशुओं की उपयोगिता तथा उनकी बलि दिया जाना हिंसा नहीं माना जाता था। गायों के अपहरण राज्य सम्पति का सूचक माना जाता था। बुद्ध ने तो यहाँ तक कहा है कि माता-पिता तथा रिश्तेदारों की भांति पशु भी हमारे मित्र और मेहमान है।[6] गौहत्या व ब्राह्मण हत्या बराबर पाप समझे जाने लगे।[7] धार्मिकता विकास के पर्याय के रूप में परिकल्पना परिदृश्य रूप में विभिन्न देवी-देवताओं को उनके प्रिय पशु को उनके भाव रूप में जोड़ दिया गया। जैसे—शिव जी को बैल व सिंह की खाल से, गणेश जी को चूहे से, सरस्वती को मोर, विष्णु को गरुड़, रानी को कुत्ता, यमराज को भैंसा आदि से।

2. मांसाहार रूप में

सिन्धु सभ्यता में भेड़, बकरी तथा सूअर के मांस खाने का विवरण है।[8] वैदिक साहित्य में ''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'' (यज्ञ के बलि दिये मांस का प्रसाद स्वरूप भक्षण भी किया जाता था)[9] जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर अरिष्वटनेमि द्वारा विवाह अवसर पर मांसाहार प्रबंध, मौर्यकाल में अशोक द्वारा पशु हत्या निषेध और प्रथम राजभवन में भोजन रूप में मांसाहार व्यवस्था, इन्द्र को मांसाहार प्रिय होना आदि उदाहरण देखे जा सकते है। चरक ने चरक संहिता में गाय के मांस को औषधि रूप में बताया है।[10]

3. कृषि के कार्य में पशुओं का उपयोग

मनुष्य ने कृषि कार्य के प्रारम्भिकता के साथ पशुओं का उपयोग उसकी पूरकता के रूप में किया जैसे—वैदिक साहित्य में बैलों का प्रयोग कर हल जोतने का विवरण है।[11] कालीबंगा से जुते हुये खेतों का साक्ष्य मिलना उनके हल प्रयोग का परिचय संकेत देता है। जो सम्भवत: बैलों वाले हल का उल्लेख है।[12] जमीन की पैदावार बढ़ाने के लिए खेतों में खाद भी डाला जाता था जो पशुओं की गोबर (करीष) का होता था।[13] अनाज काटकर खलिहानों में एकत्र करके बैलों की सहायता से मर्दन धान्य भूसा अलग किया जाता था।[14]

4. वस्त्र निर्माण (ऊन प्राप्ति) में पशुओं का महत्त्व

प्राचीन काल में पशुओं से उन प्राप्त करके शीत ऋतु हेतु ऊनी वस्त्र बनाने में पशुओं का योगदान था, जैसा कि सिन्धु सभ्यता में भेड़ बकरी से ऊन प्राप्ति का विवरण मिलता है।[15] वेदोत्तर काल में गान्धार तथा कोडुम्बर की भेड़ें ऊन हेतु प्रसिद्ध थी। मौर्यकाल में सूत तथा ऊन के तन्तुओं का अधिकारी सूत्राध्यक्ष होता था।[16] इस प्रकार भेड़ों के ऊन के द्वारा वस्त्रों का परिधान कालान्तर में प्रचलन था। एक स्थान पर पूषन देवता को भेड़ की ऊन का वस्त्र धारण किए हुए प्रदर्शित किया गया है।[17] घोड़े के बाल का प्रयोग मानव के मुस हो जाने पर उसे समाप्त करने के लिये होता था। ऊँट के बाल तो बिस्तर का गद्दा बनाने में काम आता था।

5. यातायात के रूप में पशुओं का महत्त्व

प्राचीन भारतीय इतिहास में आवागमन के रूप में पशुओं का महत्त्वपूर्ण स्थान था चाहे वह कृषि उपज का एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का कार्य हो या सवारी ढोने का कार्य हो। जैसे सैन्धव काल में भैंसा, गधा व ऊँट बोझा ढोने के काम आते थे।[18] ऋग्वेद काल में बैलों का रथ और गाड़ियों को खींचने हेतु प्रयोग किया जाता था। एक स्थान पर सारथी केशी द्वारा चलाये जाने वाले एक ऐसे वाहन का वर्णन किया गया है जिसमें वृषभ जुता हुआ था।[19] हाथी राजकीय सवारी के रूप में काम आता था। जैसे एन.सी. बंद्योपाध्याय के अनुसार उत्तरवैदिक काल में हाथी पर शासक सवारी करते थे।[20] मौर्यत्तर गुप्त काल में खच्चर[21], ऊँट[22] और बैलों पर माल का लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता था।[23]

6. दुग्धपान रूप में पशुओं का महत्त्व

सिन्धु सभ्यता में दूध के लिए बहुसंख्यक रूप में गायें, बकरी, भैंस एवं भेड़ पालने का विवरण है। वैदिक कालीन मन्त्रों से पता चलता है कि गाय का उपयोग दूध एवं घी, दोनों के लिए किया जाता था जैसा कि उल्लेख है। पुत्री के 'दृहितृ' शब्द का संकेत मिलता है कि दूध दुहने का कार्य घर में प्राय: पुत्रियाँ करती थी।[24] ग्राम्य पशुओं में गाय, भेड़, बकरी आदि दूध देने वाले पशुओं को ग्वाले द्वारा जंगल में चराने का विवरण प्राप्त होता है।[25]

इसी तरह ब्रह्मण पुत्र को बकरियाँ, वैश्य, को गाय, पशुधन बंटवारे में बताया है। तथा इस से परिवार में दूध, घी, मक्खन, प्राप्ति तथा आर्थिक स्थिति को मजबूत बताता है।[26] पतंजलि ने गुप्तकाल में माना की दूध, दही, घी, मक्खन के लिए गाय पाली जाती थी।[27]

7. चर्म उद्योग रूप में

वैदिक काल में चर्मकार का महत्त्वपूर्ण स्थान था राजा के प्रमुख 12 रत्नियों में चर्मकार प्रमुख था और चर्म उद्योग का अपना अलग महत्त्व था चर्म उद्योग पूरी तरह पशुओं पर निर्भर करता था पशु चर्म से विभिन्न प्रकार के उपयोगी सामान बनाये जाते थे शिवपुराण में शंकर भगवान को सिंह चर्म धारण करने वाला बताया है। मानवीय विकास में सर्वप्रथम मानव ने स्वयं के द्वारा निर्मित गृहचर्म तम्बू बनाया था। युद्ध में अस्त्र शस्त्रों की पकड़ मजबूत हेतु चर्म का प्रयोग होता था आत्म रक्षार्थ मोटे चमड़े का अंगरखा भी सैनिक धारण करते थे। इसके अलावा जूते, थैले, वस्त्र निर्माण किया जाता था ऋग्वेद में चमड़े का काम करने वाले चर्मत्र[28] कहलाते थे। पशु चर्म से थैले और आच्छादन बनाते थे।[29] चमड़े के पात्रों में ही शहद, तेल तथा अन्न आदि पदार्थ रखे जाते थे।[30] वेदोत्तर काल में दुबाली (रस्सी) शटक-जूता आदि वस्तुएँ चर्मकार ही बनाता था।[31] मैगस्थनीज तथा नियार्कस ने चमड़े के सफेद उत्तम ऊँची एड़ी वाले जूतों का उल्लेख किया है।[32]

8. सैन्य गतिविधियों के रूप में पशुओं का महत्त्व

प्राचीन राज्य की राजनैतिक शक्ति रूप में युद्ध लड़ा जाता था उसमें पशुओं का महत्त्वपूर्ण स्थान था जिसमें घोड़े, हाथी, ऊँट, बैल आदि प्रमुख थे जैसे एक मन्त्र से यह संकेत मिलता है कि ऊँट का प्रयोग युद्ध के लिए किया जाता था।[33] मौर्यकाल में कौटिल्य ने हाथियों को राजा की विजय का प्रमुख साधन बताया है।[34] सिकन्दर अपनी अश्वसेना के कारण ही महान् बन सका था। मौर्यकाल में पशुओं का सैन्य रूप में महत्त्व छः अंगों से पता चलता है जैसे—रथ सेना, गज सेना, अश्व सेना आदि[35] गुप्त काल में घोड़ों को एक साथ बैलों की भांति जोत कर बराबर खड़ा कर दिया जाता था। जिसमें रथ रूपी आकार में तीन चार योद्धा बैठ सकते थे इस प्रकार रहा महत्त्वपूर्ण थे।[36]

9. उपचार निदान हेतु

प्राचीन भारतीय इतिहास के सन्दर्भ में हम देखते है कि पशुओं के दूध, मांस आदि उपयोगी तत्वों से अनेक प्रकार रोगों को दूर करने में सहायक होते थे। जैसों की वैदिक काल में उल्लेख ही धूप में विचरण करने वाली गाय के दूध से क्षय रोग की सम्भावना नहीं रहती है।[37] उपचार निधान रूप में चरक ने चरक संहिता में घोड़े के मांस का यक्षमा में प्रयोग बताया है। दुरबा भेड़ को शरद ऋतु में सेवनीय आहार करने पर नीरोगी की सम्भावना बढ़ती है।[38] इस तरह भेड़ का दूध टूटी हुई हड्डी को जोड़ने, गौमूत्र ज्वर निधान, गौरस, दूध, तीव्र बुद्धियता प्रदान करने वाला माना है। भेड़ के मूत्र में शुद्ध रागें त्रिफला अदरख से बच्चे के नेत्र रोग को दूर करता है।

10. आय प्राप्ति में पशुओं का महत्त्व

किसी भी राज्य देश समृद्धि अर्थव्यवस्था में पशुओं से होने वाली आय की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसे—ऋग्वेद में गाय, घोड़े तथा अच्छे पुत्र धन सम्पत्ति माने जाते है।[39] वैदिक काल में पशु वस्तु-विनिमय साधन रूप में प्रयोग लाये जाते थे, कौटिल्य के अर्थशास्त्र में हाथी दांत आकर्षक वस्तुएँ थी। भडौच बन्दरगाह से पशु क्रय-विक्रय होता था। हाथी दांत गुप्त काल में विदेशों में भेजते थे जिससे भारत को बहुत आय होती थी।[40]

11. मनोरंजन कार्य तथा अन्य रूप में पशुओं का महत्त्व

प्राचीन भारत में शिकार, मदारी द्वारा बन्दरों को नचाना, मुर्गों की लड़ाई आदि सामाजिक परिवेश के मनोरंजन पशु सहायक थे। सिन्धु काल में मिट्टी के खिलौने से ज्ञात होता है। कुत्ते शिकार खेलने के काम आते थे। हड़प्पा से प्राप्त मिट्टी की मूर्ति में कुत्ता दांतों में खरगोश पकड़े हुए है।[41] इसी तरह मौर्य काल में कुत्ते रखवाली, शिकारी हेतु पाले जाते थे। पतंजलि ने भी कुत्तों की रखवाली अपराधियों को पकड़ने से सहायता का उल्लेख किया है। इस तरह पशुओं प्राचीन भारत से आधुनिकता तक उपयोगी रूप में रहे है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत सोने की चिड़िया के नाम से जाना जाता था जिसका कारण आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होना था जिसका आधार पशुपालन था जैसा की हम देखते है सैन्धव काल में पशुओं को परिचित होने के पीछे उनकी उपयोगिता रही होगी और इसी उपयोगिता से पशु चिकित्सा, अर्थव्यवस्था में पशुओं का महत्त्व निर्धारण हुआ। पशुओं का यह महत्त्व, धार्मिक, मांसाहार कृषि कार्य, वस्त्र निर्माण, यातायात, दुग्धपान, चर्म

उद्योग सैन्य गतिविधियों मनोरंजन, आय प्राप्ति, उपचार आधि विभिन्न रूपों में दिखाई देता है जो प्राचीन काल से वर्तमान काल तक परिवर्तनशील रूप में रहा है। तथा यह परिवर्तन सूक्ष्म से लेकर, विस्तृत स्वरूप में है।

सन्दर्भ सूची

1. गुप्ता, डॉ. देवेन्द्र कुमार, प्राचीन भारत में व्यापार, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, नई दिल्ली, पृ.सं. 1
2. उपर्युक्त, पृ.सं. 5
3. सिंह, केशव प्रसाद, सिन्धु सभ्यता, पृ.सं. 48
4. शतपथ ब्राह्मण, 3/1/2/3 (सम्पादक ए. बेवर, लन्दन 188 5)
5. भगवतराम गुप्त—आयुर्वेद का प्रमाणिक इतिहास, चौखम्बा कृष्ण दास अकादमी वाराणसी, 2003, पृ.-367
6. रघुवंश 5/50 (निर्णय सागर, मम्बई, 1916)
7. अर्नेस्ट मैके—दी इण्डस सिविलाईजेशन, हिन्दु सिविलाइजेशन, 1935, पृ.सं. 44
8. गुप्त, भगवतराम, आयुर्वेद का प्रमाणिक इतिहास, चौखम्बा कृष्ण दास अकादमी, वाराणसी, 2003, पृ.367
9. चरक —27,76 पृ. (जे विधासागर, कलकत्ता, 1896)
10. ऋग्वेद—10/102/6 (वैदिक शोध संस्थान, पूना 1937-1946)
11. काठक संहिता, 15/2 (सम्पादक वॉन जेडर, लिपिजिंग 1900-1911)
12. सत्यकेतमु, विद्यालंकार, (प्राचीन भारतीय इतिहास का धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 1985, पृ.सं. 220
13. महाभारत 12/164/12, 6/103/3 (नीलकण्ड की टीका संहिता, पूना 1929-33)
14. अर्नेस्ट मैके, दी इण्डस सिविलाइजेशन, पृ.सं. 44
15. अग्निहोत्री, पतंजलिकालीन भारत, पटना, 1963, पृ.सं. 294-95
16. ऋग्वेद—10/26/61
17. अर्नेस्ट मैके, पूर्वोक्त, पृ.सं. 44
18. ऋग्वेद 10/102/6
19. बंधोपाध्याय, एन.सी., इकोनोमिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस, पृ.सं. 139
20. रघुवंश, 5/32 (निर्णय सागर, बम्बई 1916)
21. अमर कोष 10/23 (मोतीलाल बनारसी दास वाराणसी, 1966-68)
22. मनुस्मृति 8/296-298 (मेघा तिथि भाष्य सहिता कलकत्ता 1932-39)
23. गुप्ता, डॉ. देवेन्द्र कुमार, प्राचीन भारत में व्यापार, पृ.सं. 13
24. मुखर्जी, राधामुकुद, हिन्दू सभ्यता, ऐक्टीसिओ, लन्दन, 1912, पृ.सं. 175
25. अर्थशास्त्र 3/6
26. बृहत्संहिता—56/5-19 (विधा सागर कलकत्ता 1989)
27. ऋग्वेद 8/5/38
28. ऋग्वेद 8/06/38
29. बौधायन स्त्रोत सूत्र-15/6
30. पाणीनी की अष्टाध्यायी 5/1/15 (निर्णय सागर बम्बई 1929)
31. दास, एस.के., इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ एशियेन्ट इण्डिया, दिल्ली प्रकाशन, 1925, पृ.सं. 155
32. ऋग्वेद—1/138/2
33. अर्थशास्त्र 3/2/26
34. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2002, पृ.सं. 227
35. गौड़, बी.एल. आयुर्वेदतिहास परिचय् चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 144
36. चरक संहिता सूत्र 6/43 (जे विद्या सागर कलकत्ता 1896)
37. ऋग्वेद 5/4/11 अश्विन सुपुत्रिणा बीरवन्तयि नराते स्वस्ति
38. ला डाइजेस्ट्स ऑफ जस्टीनियन, पृ.सं. 606